संपादकीय

नंदीग्राम में राजनैतिक महासंग्राम

एक अनजाने से गांव नंदीग्राम को अंतर्राष्ट्रीय सुर्खियों में लाकर वाम सरकार के पराभव की इबारत लिखने वाली ममता बनर्जी ने आज उसी नंदीग्राम से विधानसभा चुनाव लड़ने की घोषणा करके भाजपा को रणनीति बदलने को मजबूर कर दिया है। भाजपा ने कभी ममता का दहिना हाथ रहे जिस शुभेंदु अधिकारी को दक्षिणी बंगाल में पार्टी को स्थापित करने के लिये प्रतिनिधि चेहरा बनाया था, ममता ने उसी के खिलाफ चुनाव लड़ने की घोषणा करके संग्राम के कायदे बदल दिये हैं। अपनी परंपरागत भवानीपुर सीट के बजाय नंदीग्राम को केंद्र में लाकर ममता एक तीर से कई शिकार करने की सोच रही हैं। दरअसल, पिछले लोकसभा चुनाव में 18 सीटें जीतने के बावजूद भाजपा दक्षिण बंगाल के इस इलाके में ज्यादा कुछ नहीं कर पायी थी। ममता भाजपा की इस महत्वाकांक्षा पर विराम लगाकर सत्ता के समीकरणों को अपने पक्ष में करने का प्रयास कर रही है। दरअसल, इस सीट में अल्पसंख्यकों की संख्या निर्णायक रही है। पार्टी कैडर के वोट हासिल करने के बाद अल्पसंख्यक वोट मिलने से प्रत्याशी की जीत निश्चित हो जाती है। भाजपा मानकर चल रही थी कि ममता बनर्जी अल्पसंख्यक प्रत्याशी को टिकट देगी तो जयश्री राम के नारे के साथ उसकी झोली वोटों से भर जायेगी। लेकिन ममता बनर्जी ने खुद चुनाव लड़ने का फैसला करके भाजपा को रणनीति बदलने को मजबूर कर दिया है। इस इलाके में तृणमूल कांग्रेस का मजबूत कैडर रहा है लेकिन भाजपा यहां कार्यकर्ताओं के मामले में पिछड़ी हुई थी। वह मानकर चल रही थी कि शुभेंदु अधिकारी के समर्थक कैडर की कमी को पूरा कर देंगे। इस ?इलाके में शुभेंदु अधिकारी परिवार का खासा दबदबा रहा है। तृणमूल कांग्रेस का जो कैडर दुविधा की स्थिति में था, वह ममता के नये दांव के चलते अब पार्टी की ओर लौटने लगा है। जो शुभेंदु अधिकारी के लिये समस्या खड़ी कर सकते हैं। एक वजह यह भी है कि ममता बनर्जी बचाव के बजाय अधिक आक्रामक मुद्रा में नजर आ रही हैं। दरअसल, राजनीति के तमाम मुद्दों के अलावा ममता ने नंदीग्राम में भाजपा के हिंदुत्व कार्ड का जवाब देना शुरू कर दिया है। जय श्रीराम के नारे का मुखर विरोध करने वाली ममता ने हिंदू वोटरों पर डोरे डालने शुरू कर दिये हैं। अब तक भाजपा ने ममता की जो मुस्लिम तुष्टीकरण की छवि गढ़ी थी, ममता ने उसकी काट तलाश ली है। अपनी नंदीग्राम रैली के मंच से चंडी पाठ के उच्चारण, मंदिरों की परिक्रमा तथा शिवरात्रि को घोषणापत्र जारी करने के वक्तव्य ममता की रणनीति में स्पष्ट बदलाव के संकेत हैं। इलाके के जिन सत्तर फीसदी बहुसंख्यक वोटों के जरिये भाजपा जिस नंदीग्राम को जीतने की योजना बना रही थी, उसमें ममता ने सेंध लगानी शुरू कर दी है। अब ममता अपनी धार्मिक प्रतिबद्धताएं जताकर और खुद को ब्राह्मण की बेटी बताकर छवि बदलने की कवायद में जुटी है, जिससे लगता है कि नंदीग्राम हिंदुत्व की नयी प्रयोगशाला में तब्दील होता जा रहा है। भारतीय लोकतंत्र के लिये यह विडंबना ही कही जायेगी कि जिस नंदीग्राम में विकास और जमीनी मुद्दों पर वोट मांगे जाते, वहां धार्मिक ध्रुवीकरण का सहारा लेकर चुनावी जीतने के लिये कवायदें की जा रही हैं। यह भारतीय लोकतंत्र के लिये शुभ संकेत कदापि नहीं कहा जा सकता। निस्संदेह, ममता के सामने अब तक की सबसे बड़ी चुनौती है। एक दशक के कार्यकाल के बाद उसका मुकाबला एक ऐसे दल से है जो अपने भरपूर संसाधनों और आक्रामक चुनाव रणनीति से पूरे देश में जीत का अभियान चला रहा है। दल को केंद्रीय सत्ता में होने का अतिरिक्त लाभ भी है। मगर इसके बावजूद अपने आक्रामक तेवरों व जुझारू राजनीति के लिये प्रसिद्ध ममता बनर्जी भी आसानी से हथियार डालने वाली राजनेता नहीं है। पश्चिम बंगाल में तीन दशक से अधिक की वामपंथी सत्ता का अंत करने वाली और कांग्रेस से निकलकर कांग्रेस के खिलाफ निर्णायक जीत हासिल करने वाली ममता बनर्जी भी राजनीति के सभी सधे दांव खेलना जानती है। और सभी दांव वह भाजपा के खिलाफ अपना भी रही है।

'विश्वास-अविश्वास' का राजनीतिक सच

राजनीति

राजकुमार सिंह

राजनीति भी अजीब है। कब विश्वास, अविश्वास में बदल जाये—कहा नहीं जा सकता। भाजपा का उत्तराखंड के मुख्यमंत्री त्रिवेंद सिंह रावत में विश्वास नहीं रहा तो उधर केरल में पीसी चाको का अपनी पार्टी कांग्रेस में ही विश्वास नहीं रहा। केरल में अगले महीने चुनाव हैं तो उत्तराखंड में अगले साल। जाहिर है, इस डगमगाते विश्वास का संबंध चुनाव से ही है। कांग्रेस की राजनीति करते हुए ही युवा से बुजुर्ग हो गये चाको को लगा कि जब टिकट वितरण में ही उनकी नहीं सुनी जा रही तो कांग्रेसनीत यूडीएफ के सत्ता में आ जाने पर भी क्या होगा? उधर भाजपा को अहसास हुआ कि वर्ष 2017 में तमाम स्थापित चेहरों को नजरअंदाज कर जिन त्रिवेंद्र सिंह रावत को उत्तराखंड का मुख्यमंत्री बनाया था, उनकी अगुवाई में आगामी चुनाव वैतरणी पार नहीं की जा सकती। अब उनकी जगह तीरथ सिंह रावत की ताजपोशी की गयी है। राजनीति में समय के साथ किस तरह विश्वास-अविश्वास बदल जाते हैं, उत्तराखंड का नेतृत्व परिवर्तन उसका भी उदाहरण है। 2017 के विधानसभा चुनाव में तीरथ सिंह को टिकट के लायक भी नहीं समझा गया था। वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव में उन्हें टिकट तो दिया गया, लेकिन उनके गुरु रहे भुवनचंद खंडूरी के बेटे मनीष के विरुद्ध पौढ़ी गढ़वाल से, जो कांग्रेस प्रत्याशी थे।

वह तीरथ पर विश्वास था या बागी भाजपाई भुवनचंद खंडूरी के बेटे से चुनावी भिड़ंत के जरिये निष्ठा की परीक्षा—कह पाना मुश्किल है। तीरथ भारी अंतर से क्षेत्र के मतदाताओं का विश्वास जीतने में सफल रहे, पर उसका पुरस्कार पाने के लिए उन्हें लंबा इंतजार करना पड़ा। मुख्यमंत्रित्वकाल के चार साल पूरा करने से महज 9 दिन पहले भाजपा आलाकमान ने जब त्रिवेंद्र को सिंहासन खाली करने का आदेश दिया, तब भी दावेदारों की कतार छोटी हरगिज नहीं थी। सदाबहार सतपाल महाराज से लेकर केंद्रीय मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक तक कौन-सा ऐसा बड़ा नेता है, जो मुख्यमंत्री पद की दौड़ में नहीं था। कहा जा रहा है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा के प्रति निष्ठा तीरथ के पक्ष में गयी, पर यह सब तो 2017 में भी था ही? भाजपा आलाकमान ने देहरादून से दिल्ली तक मंथन के बाद अंततः सत्ता परिवर्तन का ही फैसला किया तो मान लेना चाहिए कि साफ छवि के बावजूद त्रिवेंद्र जन आकांक्षाओं की कसौटी पर खरा नहीं उतर पाये होंगे, पर क्या इस आकलन में कुछ ज्यादा ही समय नहीं लग गया? महज एक साल के शेष कार्यकाल में तीरथ ऐसा चमत्कारिक क्या कर पायेंगे कि मतदाता भाजपा को पुनः सत्ता की तीर्थ यात्रा का टिकट दे दें?

चुनाव से ऐन पहले सत्ता परिवर्तन के पीछे एक परंपरागत सोच काम करती है कि चेहरा बदलने से सत्ता विरोधी भावना शांत पड़ जायेगी। कभी चेहरा, चाल और चरित्र बदलने का नारा देने वाली भाजपा अब खुद चेहरे बदलने से चुनाव जीतने की बिसात बिछाने लगी है तो शायद इसीलिए कि चाल और चरित्र बदलने के मुकाबले चेहरा बदलना ज्यादा आसान होता है, पर इससे भारतीय राजनीति की विडंबनाएं और सीमाएं भी उजागर हो ही जाती हैं। चेहरा बदल कर सत्ता विरोधी भावना को भरमाने की कवायद हर बार कामयाब हो, यह जरूरी नहीं है। दिल्ली में खुद भाजपा इसकी भुक्तभोगी रही है। 1993 के विधानसभा चुनाव जीत कर दिल्ली में सरकार बनाने वाली भाजपा ने सत्ता विरोधी भावना शांत कर चुनावी समीकरण साधने के कवायद में पांच साल में तीन मुख्यमंत्री बदले, फिर भी अपनी नियति नहीं बदल पायी। भाजपा ने दिल्ली के दिग्गज मदनलाल खुराना को दो साल 86 दिन, राजनीति के भद्र पुरुष साहिब सिंह वर्मा को दो साल 227 दिन और हरियाणा की बेटी सुषमा स्वराज को 51 दिन के लिए मुख्यमंत्री की कुर्सी सौंपी, पर अंततः हिस्से में हार ही आयी। और हार भी ऐसी अंतहीन-सी कि उसके बाद तीन कार्यकाल तक कांग्रेसी शीला दीक्षित मुख्यमंत्री रहीं और अब दो कार्यकाल से आम आदमी पार्टी के अगुवा अरविंद केजरीवाल जमे हैं।

अब चाको और कांग्रेस की बात। छात्र राजनीति से कांग्रेस की मुख्यधारा राजनीति तक पहुंचे पीसी चाको की छवि भद्र राजनेता की रही है। 1980 में ईके नायनार के मुख्यमंत्रित्वकाल में पहली बार विधायक चुने जाने पर ही मंत्री बनने के बाद चाको ने कांग्रेसी राजनीति में पीछे मुड़ कर नहीं देखा। छोटे से राज्य केरल की, गठबंधन पर टिकी, कांग्रेसी राजनीति में ईके नायनार, करुणाकरन और एके एंटनी सरीखे दिग्गजों के बीच किसी युवा के लिए अपनी जगह बना पाना आसान नहीं हो सकता था। फिर भी चाको सांसद और महासचिव बन कर राष्ट्रीय राजनीति तक पहुंचे और अपनी अलग पहचान बनायी, पर अंततः राज्य की राजनीति के क्षत्रपों के ही चक्रव्यूह में ऐसे फंसे कि कभी जिस नेहरू-गांधी परिवार को उन्होंने देश का प्रथम परिवार कहा था, उसी से मोहभंग के चलते अब कांग्रेस को अलविदा कहना पड़ा। अब जबकि मतदान में एक महीना भी नहीं रह गया है, चाको का इस्तीफा कांग्रेस के हित में तो हरगिज नहीं हो सकता। फिर भी अगर पवन खेड़ा सरीखे कांग्रेस प्रवक्ता कटाक्ष कर रहे हैं कि 'बड़ी देर कर दी हुजूर जाते-जाते' तो सहज ही समझा जा सकता है कि देश की सबसे पुरानी पार्टी अब आत्मघात में सक्षम है, उसे दुश्मनों की जरूरत नहीं।

विश्वास-अविश्वास की यह चर्चा हरियाणा के बिना अधूरी है, जहां 14 माह पुरानी मनोहर लाल खट्टर सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया गया। अंजाम वही हुआ, जो होना था। 88 सदस्यों की प्रभावी संख्या वाली हरियाणा विधानसभा में अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मात्र 32 और विरोध में 55 वोट पड़े। अविश्वास प्रस्ताव पेश करने वाली कांग्रेस के ही 30 विधायक हैं। उनके अलावा सिर्फ दो निर्दलीय विधायकों ने अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन किया, जो पहले ही ऐसा करने की घोषणा भी कर चुके थे। जोड़तोड़ की राजनीति में पीएचडी भजनलाल और तब 10 जनपथ के वफादार चौधरी बीरेंद्र सिंह को धता बता कर हरियाणा पर 10 साल तक राज करने वाले भूपेंद्र सिंह हुड्डा भी जानते थे कि भाजपा-जजपा सरकार को बहुमत हासिल है। इसके बावजूद अविश्वास प्रस्ताव लाया गया तो उसकी राजनीति विधानसभा से बाहर जनता के बीच बहुत दूर तक जाती है। राजनीति में अक्सर निगाहें कहीं ओर होती हैं और निशाना कहीं ओर। इस अविश्वास प्रस्ताव का असली निशाना भी मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर नहीं, बल्कि उपमुख्यमंत्री दुष्यंत चौटाला हैं। चौटाला परिवार के सत्ता संघर्ष में इनेलो से अलग अपनी जजपा बनाने वाले दुष्यंत ने 2019 के चुनाव में नारा तो दिया था भाजपा को यमुना पार भेजने का, लेकिन त्रिशंकु विधानसभा बनते ही उसकी बैसाखी बनकर उपमुख्यमंत्री पद पा लिया। अन्य दलों के टिकट से वंचित दमदार नेताओं को उम्मीदवार बनाकर जजपा 10 सीटें जीतने में सफल रही थी।

बीजेपी मुख्यमंत्रियों को कड़ा संदेश है 'उत्तराखंड'

विश्लेषण

नदीम

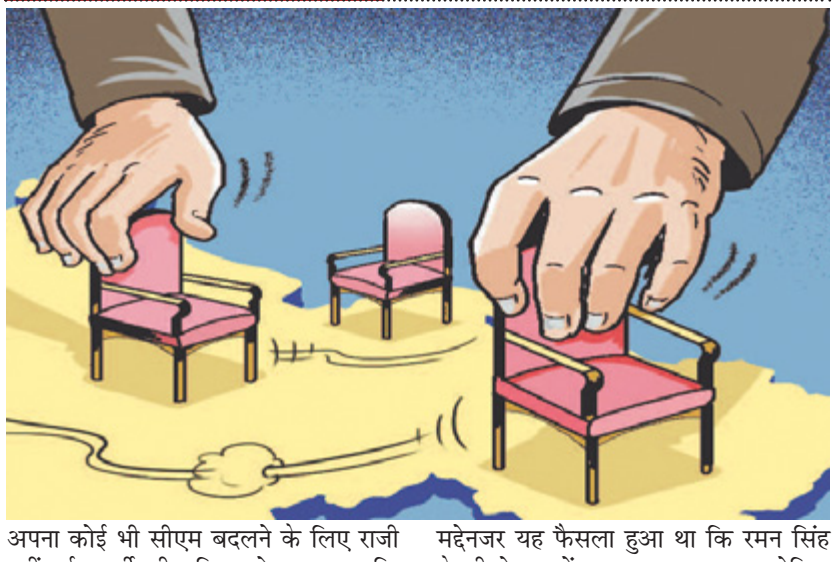

पिछले एक हफ्ते के दरमियान उत्तराखंड का जो भी सियासी घटनाक्रम रहा है, उसे एक राज्य के घटनाक्रम के रूप में देखने के बजाय अगर बड़े फ्रेम में देखा जाए, तो दिखेगा कि बीजेपी ने उस दुविधा से पार पाने की ओर कदम बढ़ाया है, जिसकी जकड़न का शिकार वह पिछले कुछ सालों से रही है। जब आप सीधे तौर पर किसी फैसले से जुड़े होते हैं, तो उसकी नाकामयाबी को जल्दी स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। 2014 में केंद्र की सत्ता में आने के बाद बीजेपी ने जब राज्यों में भी विजय पताका फहरानी शुरू की, तो उसने एक नया प्रयोग किया- बिल्कुल नए चेहरों को मुख्यमंत्री बनाने का। इस प्रयोग के तहत कई राज्यों में ऐसे मुख्यमंत्री बनाए गए, जिनके बारे में खुद पार्टी के अंदर भी कभी नहीं सोचा गया था कि वे मुख्यमंत्री भी बन सकते हैं। लेकिन यह बदली हुई बीजेपी थी, जिसके नेतृत्व का जादू अगर आम लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा था तो उसके अप्रत्याशित फैसले भी पार्टी जनों को स्वीकार करने ही थे। लेकिन बाद के वर्षों में यह देखा गया कि अलग-अलग राज्यों में कई मौके ऐसे आए, जब अप्रत्याशित रूप से चुने गए सीएम परफॉरमेंस की कसौटी पर खरे नहीं उतरे और पार्टी के विधायकों के अंदर भी उनके खिलाफ नाराजगी शुरू हो गई। लेकिन टॉप लीडरशिप हमेशा अपने सीएम के बचाव में ही दिखी। एक मौके पर इसकी वजह एक बड़े नेता ने मीडिया के साथ अनौपचारिक तौर पर साझा की थी, 'हम कांग्रेस नहीं बनना चाहते कि मुख्यमंत्रियों को ताश के पत्ते की तरह फेंटते रहें। अगर हमने मुख्यमंत्री के रूप में किसी को चुना है, तो उसे काम करने का पूरा मौका भी देना होगा। गलतियां तो सभी से होती रहती हैं।' शायद यही एक वजह थी कि गुजरात को छोड़कर पार्टी लीडरशिप अपना कोई भी सीएम बदलने के लिए राजी नहीं हुई। पार्टी लीडरशिप को लगता था कि अगर उसने किसी एक जगह बदलाव के लिए हामी भर दी, तो फिर इस सिलसिले को रोक पाना आसान नहीं होगा। उत्तराखंड में नेतृत्व परिवर्तन का मुद्दा शायद एक बार और टल जाता, लेकिन कोई तीन साल पहले छत्तीसगढ़ का घटनाक्रम बीजेपी की टॉप लीडरशिप के जेहन में कहीं न कहीं बना हुआ लगता है। वह चूक, जो छत्तीसगढ़ को लेकर हुई थी, उसकी पुनरावृत्ति पार्टी उत्तराखंड में नहीं होने देना चाहती थी। छत्तीसगढ़ में रमन सिंह लगातार तीन टर्म से सीएम हो रहे थे, लेकिन पिछले चुनाव के आखिरी साल में उनके खिलाफ पार्टी के अंदर ही माहौल बन गया था। पार्टी के अधिसंख्य विधायकों की राय थी कि नेतृत्व में परिवर्तन हो, लेकिन टॉप लीडरशिप को लगा कि अगर चुनाव के आखिरी साल नेतृत्व परिवर्तन किया जाता है तो इसका गलत संदेश जाएगा। इसके मद्देनजर यह फैसला हुआ था कि रमन सिंह के ही नेतृत्व में चुनाव लड़ा जाएगा, लेकिन इस फैसले की उसे भारी कीमत चुकानी पड़ गई थी।

चुनाव नतीजे के बाद पार्टी की समीक्षा बैठक में यह पाया गया था कि अगर नेतृत्व परिवर्तन करके चुनावी मैदान में जाया जाता, तो बेहतर नतीजे पाने की संभावना थी। उत्तराखंड में भी अगले एक साल के अंदर ही चुनाव होने हैं। 2017 में मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने के बाद से त्रिवेंद्र सिंह रावत के खिलाफ पार्टी विधायकों के बीच असंतोष का जो माहौल बनने लगा था, वह चौथे साल में सतह पर दिखने लगा। नेतृत्व परिवर्तन की मांग जब जोर पकड़ने लगी, तो वही सवाल जो छत्तीसगढ़ को लेकर पार्टी लीडरशिप के सामने खड़ा हुआ था, उत्तराखंड को लेकर भी खड़ा हुआ कि कहीं सरकार का चेहरा बदलने से कोई गलत संदेश न जाए। लेकिन लीडरशिप ने फैसला लिया कि उत्तराखंड में हम छत्तीसगढ़ जैसा कोई जोखिम नहीं लेंगे।

बीजेपी शासित राज्यों में पिछले कुछ सालों में जो एक बात देखने को मिली, वह यह कि अप्रत्याशित चयन वाले ज्यादातर मुख्यमंत्री इस वजह से अभिभूत हैं कि उन्हें तो सेंट्रल लीडरशिप का वरदहस्त प्राप्त है। उन्हें अपने सहयोगी भी बौने दिखने लग जाते हैं। उत्तराखंड में नेतृत्व परिवर्तन बीजेपी शासित सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों के लिए एक संदेश की तरह है कि उन्हें भी हटाया जा सकता है, इसलिए उन्हें अपना प्रदर्शन तो ठीक करना ही होगा, पार्टी में सभी को साथ लेकर भी चलना होगा। उनके खिलाफ असंतोष को इस आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि इससे गलत संदेश जाने का खतरा रहेगा। बीजेपी के लिए नए राज्य जीतना जितना महत्वपूर्ण है, उससे कहीं ज्यादा बड़ी चुनौती जीते हुए राज्यों में अपनी सत्ता को बरकरार रखना है। जीते हुए राज्यों को गंवाना बीजेपी की साख से जुड़ा मसला है और वे राज्य उसके लिए कहीं ज्यादा अहम हैं, जहां उसने 2014 के बाद फतेह हासिल की है। ऐसे राज्यों में अगर बीजेपी चुनाव हारती है, तो इसे बीजेपी से मोहभंग होना मान लिए जाने का खतरा है। चूंकि हर चुनाव प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की प्रतिष्ठा से जुड़ जाता है, ऐसे में बीजेपी के लिए जोखिम लेना कहीं ज्यादा मुश्किल है। उत्तराखंड के फैसले के बाद आने वाले छह महीने बीजेपी शासित कई राज्यों के लिए बेहद महत्वपूर्ण साबित हो सकते हैं। कई राज्य ऐसे हैं, जहां की परफॉरमेंस से लीडरशिप भी संतुष्ट नहीं है। साथ ही पार्टी के विधायक दल में भी सब कुछ सहज नहीं चल रहा है। एक राज्य के मुख्यमंत्री को तो विधानसभा के अंदर यह कहना पड़ा कि उन्हें प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गृह मंत्री अमित शाह का समर्थन हासिल है, और किसी में भी यह दम नहीं है कि उन्हें मुख्यमंत्री पद से हटा सके।

आजकल

चुनाव में ममता का चोटिल होना

बीजेपी के शीर्ष नेताओं की बात ही छोड़िए, केंद्रीय मंत्रियों में से भी किसी ने घटना की निंदा करते हुए या ममता के शीघ्र स्वस्थ होने की कामना करते हुए कोई ट्वीट नहीं किया। कांग्रेस के असंतुष्ट खेमे के एक नेता आनंद शर्मा ने जरूर यह औपचारिकता निभाई, लेकिन पश्चिम बंगाल चुनावों में पार्टी की अगुआई कर रहे अधीर रंजन चौधरी ने साफ-साफ कहा कि ममता ने लोगों की सहानुभूति पाने के लिए यह पाखंड रचा है। बुधवार को नंदीग्राम में नामांकन दाखिल करने के बाद जिस तरह के घटनाक्रम में पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी घायल हुईं और फिर जिस तरह का माहौल बना, वह पूरा प्रकरण चिंताजनक है। शुरुआती रिपोर्टों के मुताबिक उनके पांव, कंधे और गर्दन में चोटें आई हैं। अगले दिन हॉस्पिटल बेड पर उनकी तस्वीरें भी आईं जिनमें उनके बाएं पैर में प्लास्टर दिख रहा है। इस पूरे मामले की निष्पक्षता से जांच होनी चाहिए ताकि स्पष्ट हो सके कि क्या हुआ और कैसे हुआ। इसके साथ ही ममता बनर्जी के शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की कामना प। बंगाल के चुनाव से किसी भी रूप में जुड़े हर राजनेता को बिना किसी हीलाहवाली के करनी चाहिए। जो बात इस प्रकरण में सबसे ज्यादा परेशान करने वाली है, वह यह कि चुनावी लड़ाई को युद्ध की तरह लड़ने के आदी होते जा रहे हमारे राजनीतिक दलों में पारस्परिक शिष्टाचार के न्यूनतम विवेक की भी किल्लत होती जा रही है। ममता के घायल होने की खबर आते ही उनकी हालत को लेकर जानकारी हासिल करने और उनकी सुरक्षा को लेकर चिंता जताने के बजाय चुनाव में उन्हें सबसे ज्यादा आक्रामक होकर चुनौती दे रही पार्टी के छोटे-बड़े तमाम नेताओं ने यह संदेह जताना शुरू कर दिया कि ममता ने हमले की फर्जी कहानी रची है। बीजेपी के शीर्ष नेताओं की बात ही छोड़िए, केंद्रीय मंत्रियों में से भी किसी ने घटना की निंदा करते हुए या ममता के शीघ्र स्वस्थ होने की कामना करते हुए कोई ट्वीट नहीं किया। कांग्रेस के असंतुष्ट खेमे के एक नेता आनंद शर्मा ने जरूर यह औपचारिकता निभाई, लेकिन पश्चिम बंगाल चुनावों में पार्टी की अगुआई कर रहे अधीर रंजन चौधरी ने साफ-साफ कहा कि ममता ने लोगों की सहानुभूति पाने के लिए यह पाखंड रचा है। दिलचस्प बात यह कि खुद ममता बनर्जी का व्यवहार भी इस मामले में कुछ खास अच्छा नहीं रहा है। कुछ दिनों पहले पश्चिम बंगाल के ही दक्षिण 24 परगना जिले में बीजेपी अध्यक्ष जेपी नड्डा के काफिले पर पथराव की खबर आई थी तो ममता बनर्जी ने उसकी सत्यता पर इसी तरह सवाल उठाते हुए संदेह जताया था कि हमले की फर्जी शिकायत की जा रही है। भारतीय लोकतंत्र के लिए यह सर्वथा नई परिस्थिति है। चुनावी लड़ाइयां तो हमेशा से होती रही हैं। इन लड़ाइयों में दांव पर सत्ता भी हमेशा लगी होती है। बावजूद इसके, अगर पिछले सात दशकों में विचारों, नीतियों और मुद्दों को नेताओं की निजी सुरक्षा और स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं से अलग रखना संभव बना रहा तो कोई कारण नहीं कि अब ऐसा न हो सके।

फिर बढ़ने लगा कोरोना का खतरा

नजरिया

फीचर

जब देश के ज्यादातर हिस्सों में कोरोना का प्रकोप कम होता दिख रहा है, उस समय महाराष्ट्र में संक्रमण के मामलों में बढ़ोतरी एक नई चिंता बन कर उभरी है। हालत यह है कि नागपुर शहर में पंद्रह से इक्कीस मार्च के बीच पूर्णबंदी की घोषणा करनी पड़ी। हालांकि इस दौरान लोगों को जरूरी वस्तुएं और आवश्यक सेवाएं मिलती रहेंगी, लेकिन पूर्णबंदी लागू करना अपने आप में यह बताने के लिए काफी है कि कोरोना संक्रमण की स्थिति वहां क्या है। इसके अलावा, सरकार बढ़ते मामलों के मद्देनजर राज्य के अमरावती, अकोला और यवतमाल में भी फिर से पूर्णबंदी पर विचार कर रही है।

जब से पूर्णबंदी में क्रमशः राहत मिलनी शुरू हुई थी, तब ये हिदायतें साथ में थीं कि अभी कोरोना का खतरा कम नहीं हुआ है, इसलिए इससे बचाव के सारे उपायों को लेकर हर वक्त सावधानी बरती जाए। वायरस के फैलाव की मुख्य वजह मास्क पहनने में लापरवाही या फिर आपस में दूरी के नियम का पालन नहीं करना है। लेकिन अफसोस की बात है कि आम लोगों ने बंदी में छूट को हर तरह की राहत के रूप में देख लिया और संक्रमण से बचाव के उपायों के तमाम नियम-कायदों की अनदेखी करनी शुरू कर दी। यह लापरवाही आम लोगों से लेकर सरकारी तंत्र तक में मौजूद है। संक्रमितों की निगरानी में कोताही, शादी समारोहों में नियमों के उल्लंघन, चुनाव प्रचार के दौरान बेलगाम जमा हुई भीड़, मौसम में बदलाव जैसी वजहों से भी संक्रमण की दर बढ़ी है।

गौरतलब है कि केंद्र सरकार की एक उच्च स्तरीय टीम ने अपने आकलन में कई तरह की खामियां दर्ज की हैं। केंद्रीय टीम की ओर से दी गई जानकारी के मुताबिक महाराष्ट्र में कोरोना वायरस से संक्रमित गंभीर मरीजों का उपचार जूनियर डॉक्टरों के भरोसे किया जा रहा है। वरिष्ठ डॉक्टर कोविड-19 के मरीजों को देखने तक नहीं आ रहे हैं। नागपुर के कुछ अस्पतालों का जिक्र करते हुए टीम ने कहा कि राज्य को चिकित्सीय प्रबंधन पर तत्काल काम करना चाहिए और हर अस्पताल में मृत्यु ऑडिट को जरूरी बनाया जाना चाहिए। आखिर क्या वजह है कि राज्य में कोरोना जैसी महामारी के मामले में भी झोलाछाप डॉक्टर सक्रिय हैं? टीम ने यह भी कहा कि जिला स्तर पर कोरोना के खिलाफ काम करने के लिए आयुष डॉक्टरों को साथ में लेना जरूरी है, ताकि रोग प्रतिरोधक क्षमता को लेकर भी लोगों के बीच काम किया जा सके!

अगर इस महामारी के शुरुआती प्रभाव को ध्यान में रखा जाए तो अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि अगर एक बार फिर यह बेकाबू हुआ तो कैसे हालात खड़े हो सकते हैं। यह समझना मुश्किल है कि महज साल भर पहले इस महामारी और इसके घातक असर के उदाहरण सामने होने के बावजूद लोगों को इससे बचाव के उपायों को गंभीरता से लेना जरूरी नहीं लग रहा है। दूसरी ओर, सरकार की ओर से भी शायद संक्रमण के प्रसार को रोकने को लेकर तय नियम-कायदों पर अमल सुनिश्चित कराने को लेकर बहुत सजगता नहीं बरती गई। नतीजतन, अब फिर नागपुर सहित राज्य के कई इलाकों में फिर से कोरोना ने अपने पांव पसारने शुरू कर दिए हैं।

अभी जैसे हालात दिख रहे हैं, क्या गारंटी है कि यह राज्य के दूसरे इलाकों में भी नहीं फैलेगा। यों देश के कुछ अन्य राज्यों में भी कोरोना का खतरा बढ़ने के संकेत हैं, लेकिन इस दूसरे दौर में सबसे ज्यादा इस वायरस का प्रकोप महाराष्ट्र में ही दिखाई दे रहा है। सवाल है कि स्थिति अचानक ही इस कदर बिगड़ती हुई क्यों दिख रही है!